

शरीर क्रिया – 1

धातु पोषणक्रम – एक वैज्ञानिक विवेचन

अध्येता : डा. कुशलपाल सिंह

निर्देशक : प्रो. बी.एन. शर्मा

वर्ष : 1991

धातु पोषणक्रम का सिद्धान्त आयुर्वेद का अपना मौलिक सिद्धांत है । धातु पोषण प्रक्रिया में जठराग्नि पाक, धात्वग्नि पाक एवं भूताग्नि पाक के पश्चात् आहार द्रव्य की परिणमन प्रक्रिया का आधुनिक क्रिया शरीर के डाइजेशन एवं मेटाबोलिज्म के साथ समन्वय स्थापित करते हुए आयुर्वेदीय मौलिक सिद्धान्तों की परिपालना के अनुरूप विशिष्ट वैज्ञानिक विवेचन करना इस शोध प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य है ।

आयुर्वेदीय धातु पोषणक्रम का आधुनिक मेटाबोलिज्म से कितना सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है तथा साथ ही सप्त धातुओं के उत्पत्ति काल के विषय में भी आचार्यों में मतैक्य नहीं है कि कितने समय में कौन सी धातु का निर्माण होता है एवं अन्नरस द्वारा कितने दिनों में शुक्र धातु की पुष्टि होती है । इस विषय पर भी आधुनिक क्रिया शरीर का अध्ययन करते हुए विशिष्ट वर्णन एवं निर्धारण किया गया है ।

आहार पोषणक्रम के विवेचनार्थ प्रतिपादित संहितोक्त तीन न्याय एवं अरुणदत्त सम्मत 'एक पक्ष परिणाम क्रम' परस्पर विरोधी न होकर एकदूसरे के संपूरक तथ्यों की विवेचना करते हैं ।

शरीर क्रिया – 2

आहार पाक प्रक्रिया एवं अग्नि का शरीर क्रियात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. महेन्द्र सिंह मीना
निर्देशक	: प्रो. रमाकान्त शर्मा
सह-निर्देशक	: डा. श्रीकृष्ण शर्मा
वर्ष	: 1992

आहार का अग्नि के द्वारा पाक प्रक्रिया पूर्वक शरीर में रूपान्तरण की समस्त उपक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करना, लोक सम्मत पुरुष में अग्नि की कार्मुकता तथा लोक का अथवा प्रकृति का आहार रूप में आत्म सात्मीकरण में अग्नि की भूमिका पर भी विचार करना इस महानिबन्ध का मुख्य उद्देश्य है ।

आहार की पाचन प्रक्रिया में त्रिविध न्याय तथा क्रम परिणाम पक्ष को वैज्ञानिक आधार देते हुए अग्नि का व्यापक वर्णन करते हुए अग्नि और आधुनिक शास्त्र में वर्णित पाचक रसों का इस महानिबन्ध में सामंजस्य स्थापित किया गया है ।

शरीर के समस्त क्रिया व्यापार ज्ञानमूलक हैं एवं ज्ञान स्वयं चिंति रूप में अग्निमूलक है । यह शरीर किंवा समस्त लोक ही अग्नि सोम की मिथः क्रिया का परिणाम है । अग्नि तत्व के दार्शनिक निर्वचनों की सहायता लेकर तथा आयुर्वेदीय संहिताओं में उपलब्ध अग्नि विषयक ज्ञान को और समृद्ध किया जा सकता है ।

शरीर क्रिया – 3

प्राणवह स्रोतस् का शरीर क्रियात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. ओम प्रकाश दाधीच
निर्देशक	: प्रो. रमाकान्त शर्मा
वर्ष	: 1992

स्रोतसों में प्राणवह स्रोतस् का प्रमुख स्थान है, क्योंकि इसी स्रोतस् पर प्राण अवलम्बित है। प्राणवह स्रोतस् की क्रियाओं के नाश से ही प्राणों का नाश होता है। शरीर में प्राकृत वैकृत स्थितियाँ स्रोतस् में ही होती रहती है। स्रोतसों में विशेष रूप से प्राणवह स्रोतस् का विशद वर्णन तथा इसकी क्रियाविधि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में स्थापित करना, इस महानिबन्ध का मुख्य उद्देश्य है।

स्रोतस् की स्थिति अभी तक संदिग्ध है। अनेक विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत स्रोतस् के बारे में हैं, आधुनिक विज्ञान में स्रोतस् को कॅपेलरीज माना जाता है। आयुर्वेदीय संहिताओं में स्रोतस् के बारे में विशद विवेचन उपलब्ध है, परन्तु उसके मूल एवं वहन करने वाली रचनाओं के बारे में संदिग्धता है, क्योंकि शारीर दृष्टि से स्पष्ट नहीं है। स्रोतस् सम्बन्धी साहित्य का अनुशीलन करते हुए स्रोतस् सम्बन्धित शरीर क्रिया का आयुर्वेदोक्त एवं आधुनिक वर्णन किया गया है।

प्राणवह स्रोतस् में हृदय, फुफ्फुसों, श्वासनलिका, कण्ठ, नासा, प्राणवाहिनी धमनियों का ग्रहण किया है एवं प्राणवह धमनियों में फुफ्फुसीय धमनियाँ एवं सिराओं (पल्मोनरी आर्टरिज एण्ड वेन्स) का ग्रहण किया है।

प्राणवह स्रोतस् दुष्टि की चिकित्सा में श्वास के समान चिकित्सा करने का निर्देश है। अतः इस दृष्टि से भी उपर्युक्त वर्णित प्राणवह स्रोतस् उपयुक्त लगता है। अतः इसके मूल में फुफ्फुसों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।

शरीर क्रिया – 4

देह प्रकृति परिज्ञान सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक अध्ययन

अध्येता : डा. हेमराज मीणा

निर्देशक : प्रो. रमाकान्त शर्मा

वर्ष : 1992

“स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च” ।। (च.सू. 30/26)

आयुर्वेद के इस प्रयोजन द्वय के सिद्ध होने में देह प्रकृति परिज्ञान सहायक होता है। रोग एवं चिकित्सा परिज्ञान के लिए प्रकृति परीक्षण महत्वपूर्ण है। रोग परिज्ञान पश्चात् तद् रोग से सम्बन्धित औषध योग में से कौनसा औषध योग सर्वाधिक लाभकारी होगा, इसका परिज्ञान चिकित्सक प्रकृति परिज्ञान से सरलता पूर्वक कर सकता है। तीव्र औषध योग, क्षीण एवं बलवान रोगियों के लिए औषध मात्रा निर्धारण में प्रकृति ज्ञान अपेक्षित है। अतः उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अध्येता द्वारा इस विषय का चयन किया गया है।

प्रस्तुत विषय के सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक अध्ययन हेतु शास्त्रोक्त विवेचनों के अनुसार अध्येता द्वारा प्रकृति परीक्षण प्रपत्र का निर्माण कर 50 व्यक्तियों पर परीक्षण किया गया।

कुल परीक्षित 50 व्यक्तियों में वातिक प्रकृति के व्यक्तियों का प्रतिशत 28, पैत्तिक 32, श्लेष्मिक 16, वातपैत्तिक 14, वातश्लेष्मिक 2, पित्तश्लेष्मिक 8, समधातु 0 रहा।

उक्त प्रकृतियों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर मानवमिति एवं मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में सार्थक रूप से भिन्नता पाई गई, किन्तु श्लेष्मिक एवं वातपैत्तिक तथा श्लेष्मिक एवं पित्त श्लेष्मिक प्रकृति को छोड़कर अन्य वर्गों में कोई सार्थक अन्तर नहीं प्राप्त हुआ।

शरीर क्रिया – 5

आर्तववह स्रोतस् का शरीर क्रियात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. बी. माया
निर्देशक	: डा. श्रीकृष्ण शर्मा
सह-निर्देशक	: डा. महेन्द्र सिंह मीना
वर्ष	: 1994

आयुर्वेद शास्त्र में आर्तव एवं आर्तववह स्रोतस् का वर्णन अति संक्षिप्त एवं सूत्र रूप में प्राप्त होता है । आयुर्वेद के संहिता ग्रन्थों में ऋतुमती स्त्री द्वारा परिपालनीय नियमों का विशद वर्णन आया है, किन्तु इनकी क्रिया एवं वहन सम्बन्धी ज्ञान पूर्ण नहीं है। इनके मूल एवं वहन करने के विषय में चरक एवं सुश्रुत के मतों में भी भिन्नता है, इस भिन्नता का निराकरण कर प्राचीन एवं आधुनिक दृष्ट्या आर्तववह स्रोतस् के विषय में स्पष्ट ज्ञान उपलब्ध करना इस महानिबन्ध का मुख्य उद्देश्य है।

इस शोध प्रबन्ध में प्राचीन एवं अर्वाचीन ग्रन्थों का अनुशीलन करके आर्तववह स्रोतस् का क्रियात्मक अध्ययन किया गया है तथा आर्तववह स्रोतस् के मूल एवं आर्तव के वहन करने के संबंध में संदिग्धता को दूर करने का प्रयास किया गया है।

आर्तव से स्त्रीबीज को मानना सिद्ध किया गया है तथा साथ में आर्तववह स्रोतस् को Fallopian Tube सिद्ध करने का प्रयास किया गया है । इसे सिद्ध करने के लिए Tubectomy के द्वारा बन्ध्यत्व की प्राप्ति का सहारा लिया गया है ।

शरीर क्रिया – 6

रसवह स्रोतस् – एक वैज्ञानिक विवेचन

अध्येता : डा. रमेश चन्द्र गुप्ता

निर्देशक : डा. श्रीकृष्ण शर्मा

वर्ष : 1994

आयुर्वेद में हृदय को रसवह स्रोतस् का मूल माना है । रसवह स्रोतस संबंधी समस्त प्राचीन एवं अर्वाचीन मतों का अनुशीलन करना इस महानिबन्ध का मूल उद्देश्य है। यद्यपि यह शोध प्रबन्ध पूर्णतः सैद्धान्तिक है तथापि एतत्सम्बंधी उत्तरवर्ती शोध कार्यों के लिए आधारभूमि प्रदान करना भी इसका उद्देश्य है ।

प्रस्तुत शोध निबन्ध में प्राच्य मनीषियों द्वारा वर्णित रसवह स्रोतस् के रचनात्मक व क्रियात्मक स्वरूप का आधुनिक शरीर क्रिया विज्ञान में वर्णित अंग प्रत्यंगों के रचनात्मक एवं क्रियात्मक स्वरूप में क्या समानता है, इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

शरीर के समस्त जलीय घटक – उदक, क्लेद, वसा, लसीका, प्लाज्मा, सुषुम्ना द्रव, फुफ्फुसावरण द्रव, हृदयावरण द्रव, संधि रस, लाला, नेत्रोदक आदि द्रव धातुएँ जो सोमात्मक हैं इन सभी की रस संज्ञा है। प्लाज्मा रस और रक्त का मध्यवर्ती उत्पाद है जो रसायनी से निःस्रुत होकर रक्त कोशिकाओं का अन्तरकोशीय द्रव भाग के रूप में परिवर्तित होने वाला द्रव है। रस का निर्माण आहार रस से और विक्षेपण हृदय से चतुर्विंशति धमनियों द्वारा होता है। इन रस धमनियों के साथ संयुक्त रसायनियों में प्रवाहित होता है और रक्त राग वैशिष्ट्य के कारण घन कणिकाओं के रूप में उद्भूत होता है ।

शरीर क्रिया – 7

आलोचक पित्त के परिप्रेक्ष्य में दर्शनेन्द्रिय का शरीर क्रियात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. कुँवर सिंह
निर्देशक	: डा. श्रीकृष्ण शर्मा
सह-निर्देशक	: डा. महेन्द्र सिंह मीना
वर्ष	: 1994

आयुर्वेद में शरीर क्रियात्मक ज्ञान दोष, धातु एवं मल के रूप में प्राप्त होता है, पित्त के पाँच भेदों में एक आलोचक पित्त का स्थान दर्शनेन्द्रिय है। इस संबंध में स्पष्ट वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत करना ही अध्येता का मुख्य उद्देश्य है।

आलोचक पित्त के परिप्रेक्ष्य में दर्शनेन्द्रिय द्वारा रूप ग्रहण प्रक्रिया संबंधी यथा प्राप्त आयुर्वेदीय एवं आधुनिक विचारों एवं तथ्यों को संकलित किया गया है तथा दर्शनेन्द्रिय की आयुर्वेदीय क्रिया को नवीन अवधारणाओं तथा यथा प्राप्त उद्धरणों से तर्कपूर्ण ढंग से समन्वित किया गया है।

आलोचक पित्त द्वारा दर्शनेन्द्रिय में दृष्टि का ज्ञान होना बताया है, तत्संबंधी ज्ञान को संकलित करने में अध्येता का प्रयास सार्थक रहा है।

शरीर क्रिया – 8

मूत्रवह स्रोतस् : शरीर क्रियात्मक विवेचन

अध्येता	: डा. देवेन्द्र कुमार व्यास
निर्देशक	: डा. श्रीकृष्ण शर्मा
सह-निर्देशक	: डा. महेन्द्र सिंह मीना
वर्ष	: 1994

शरीर ज्ञान के संदर्भ में स्रोतोज्ञान महत्वपूर्ण है, मलों के क्रम में मूत्र का स्थान सर्वप्रथम आता है, शरीर में होने वाली उपापचयी क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न हुए मूत्र का देह से बाहर निकलना स्वास्थ्य की दृष्टि से अनिवार्य है, मूत्ररूपी मल के उत्सर्जन हेतु मूत्रवह स्रोतस् नाम का तंत्र आयुर्वेद में वर्णित है, जिसका विस्तृत वर्णन और संकलन करना प्रस्तुत महानिबन्ध का उद्देश्य है।

“दोषधातुमलमूलं हि शरीरम्।” सुश्रुत के इस वाक्य पर संपूर्ण स्रोतो विज्ञान आधारित है, आयुर्वेदीय मूत्रवह स्रोतस् व पाश्चात्य चिकित्सा में Urinary system के अध्ययन संबंधी दृष्टिकोण में पर्याप्त अन्तर है, जहाँ आयुर्वेद में वृक्कों का संबंध मेदोधातु की पुष्टि से माना गया है जबकि आधुनिक विज्ञान में ऐसा नहीं माना । तत्संबंधी विवरण को स्पष्ट रूप से महानिबन्ध में विस्तार से एकत्र किया गया है ।

शरीर क्रिया – 9

त्रिदोष के परिप्रेक्ष्य में शारीरिक जैव भौतिक एवं जैव रासायनिक क्रियाओं का अध्ययन

अध्येता : डा. सुरेन्द्रपाल सिंह जयजानिया

निर्देशक : डा. श्रीकृष्ण शर्मा

वर्ष : 1994

शरीर एक जटिल एवं व्यवस्थित प्रयोगशाला है, जिसकी जैव एवं रासायनिक क्रिया के पीछे त्रिदोष हैं। इस सिद्धान्त और विषय वस्तु पर अनुसंधानात्मक अध्ययन करके इसके सैद्धान्तिक व प्रायोगिक पक्ष को विस्तृत रूप से वर्णित करना इस महानिबन्ध का उद्देश्य है ।

शरीर के किसी भी अंग की जैव भौतिक एवं जैव रासायनिक क्रियाएं यथा – हृदय का संकोच प्रसार, फुफ्फुस का फैलना-सिकुड़ना, मलाशय में जल अवशोषण, वृक्क की क्रियाएं, मस्तिष्क क्रियाएं, यकृत क्रियाएं सभी त्रिदोष आधारित क्रियाएं हैं ।

सभी जैव भौतिक एवं जैव रासायनिक क्रियाएं त्रिदोष के पित्त दोष द्वारा संपन्न होती है, ये रक्त के साथ मिलकर शुभ और अशुभ कार्यो को करते हैं। अन्य अवयवी क्रियाओं में दोषानुसार कार्य/क्रियाएं संपन्न होती हैं ।

शरीर क्रिया – 10

अवलम्बक कफ का वैज्ञानिक विवेचन

अध्येता	: डा. नन्दकिशोर चेजारा
निर्देशक	: डा. श्रीकृष्ण शर्मा
सह-निर्देशक	: डा. महेन्द्र सिंह मीना
वर्ष	: 1994

आयुर्वेद में दोषों की विकृतावस्था को रोग माना गया है एवं दोषों की प्राकृतावस्था को आधार मानकर ही विकृति का मूल्यांकन किया जा सकता है। अवलम्बक कफ के प्राकृत स्वरूप एवं वैज्ञानिक क्रियात्मक परिज्ञान के सम्बन्ध में स्पष्ट ज्ञान की आवश्यकता है। इस प्रकार अवलम्बक कफ का विस्तृत, प्राच्य तथा प्रतीच्य दृष्टि से अध्ययन करने हेतु शोध प्रबन्ध का विषय चयनित किया गया है।

वृहत्त्रयी एवं लघुत्रयी ग्रन्थों के द्वारा अवलम्बक कफ सम्बन्धी निष्कर्ष प्राप्त किए। कफ समस्त शरीर में स्थित द्रव्य विशेष नहीं बल्कि अनेक द्रव्यों का एक वर्ग है, जिसके अन्तर्गत ओज, रस, लसिका आदि का समावेश होता है, जिनका पोषण कफजन्य गुणों से युक्त आहार-विहार से होता है।

अवलम्बक कफ, कफ दोष का भेद है। यह कफ सदृश गुण-कर्माँ वाले द्रव्यों का एक वर्ग है जिसका स्थान उरःस्थल तथा Pericardial fluid, Pleural fluid, Thyroid, Parathyroid & Thymus gland के स्राव अवलम्बक कफ से साम्य रखते हैं।

शरीर क्रिया – 11

रक्तवह स्रोतस् – एक वैज्ञानिक विवेचन

अध्येता	: डा. अरविन्द कुमार शर्मा
निर्देशक	: डा. श्रीकृष्ण शर्मा
सह-निर्देशक	: डा. महेन्द्र सिंह मीना
वर्ष	: 1995

आयुर्वेद के अनुसार रक्तवह स्रोतस् का मूल यकृत व प्लीहा कहा गया है। इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि आचार्योक्त धातुओं के स्रोतोमूल उन-उन स्रोतों के समग्र मार्गों का विवरण ही नहीं अपितु ये उस स्रोतस् के दो प्रमुख आश्रय स्थानों का भी निर्देश करते हैं। रक्त के प्रमुख स्थान यकृत, प्लीहा अथवा आधुनिक दृष्ट्या हृदय मानने पर ऐसे विरोधाभासी प्रसंगों पर वर्तमान सदी के आयुर्वेदज्ञों ने गहन चिन्तन कर समन्वयवादी मार्ग निर्देश किया है, फिर भी विकासमान आधुनिक सिद्धान्तों की परिवर्तनशीलता के कारण इस विषय का चिन्तन आवश्यक है। अतः रक्तवह स्रोतस् सम्बन्धी समस्त प्राचीन एवं अर्वाचीन मतों का अनुशीलन करना शोध प्रबन्ध का प्रमुख उद्देश्य है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में रक्त एवं रक्तवह स्रोतस् सम्बन्धी प्राचीन एवं अर्वाचीन ग्रन्थों का आधार लेकर विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

रक्तवह स्रोतस् के मूल के सम्बन्ध में आचार्य चरक, सुश्रुत लगभग एक मत हैं किन्तु मूल अवयवों की रचना एवं क्रिया के बारे में विस्तृत सम्बोधन उपलब्ध नहीं है जिससे यकृत, प्लीहा, शिरा एवं धमनी तथा हृदय के क्रियाशरीर के रूप में आधुनिक चिकित्सा शास्त्र से सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक है।

शरीर क्रिया – 12

त्वक् विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में भ्राजक पित्त का शरीर क्रियात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. ऋषिकेश पानी
निर्देशक	: डा. श्रीकृष्ण शर्मा
सह-निर्देशक	: डा. महेन्द्र सिंह मीना
वर्ष	: 1995

त्वचा शरीर का बाह्य आवरण है, यह शरीर की अन्य रचनाओं यथा – सिराओं, धमनियों, मांसपेशियों, अस्थि आदि को आवृत कर शरीर का संरक्षण करती है, आयुर्वेद मतानुसार भ्राजक पित्त त्वचा के विभिन्न कार्यों को संपादित करता है, तत्संबंधी विचारों को स्पष्ट एवं विस्तृत रूप में अवतरित करना महानिबन्ध का उद्देश्य है ।

उक्त विषयवस्तु संबंधी वर्णन शास्त्र में सूत्ररूप में वर्णित है, एतदर्थ इस विषय पर कार्य करने के लिए आधुनिक ग्रन्थों का भी अनुशीलन कर भ्राजक पित्त के अध्ययन के साथ-साथ त्वचा का शरीर क्रियात्मक अध्ययन किया गया है ।

त्वचा में भ्राजक पित्त रहता है जो त्वचा की ऊष्णता और आभा का कारण है, इसके द्वारा त्वचा से कुछ स्निग्ध द्रव्यों का पाक होता है, विशेषतः पित्त द्वारा परिपक्व शरीर पर त्वचा का निर्माण होता है। यह त्वचा में रहकर अभ्यंगादि क्रियाओं से प्राप्त द्रव्यों का पाककर शरीर में पहुँचाना आदि कर्म संपन्न करता है ।

शरीर क्रिया – 13

पाचक पित्त का शरीर क्रियात्मक अध्ययन

अध्येता : डा. राजेश कुमार

निर्देशक : डा. श्रीकृष्ण शर्मा

वर्ष : 1996

आयुर्वेदीय संहिताओं में पाचन एवं चयापचय के प्रकरण में पाचक पित्त का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है । व्यवहारिक रूप में पाचन एवं चयापचय की क्रिया में पाचक पित्त की कारणता को अनुभव किया जा सकता है किन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इस सिद्धान्त की प्रस्तुति एवं पुष्टि के लिए अनुसंधान की एवं आधुनिक चिकित्साविज्ञान में वर्णित पाचन एवं चयापचय की क्रिया से समन्वय की आवश्यकता है। इसी क्रम में विभिन्न ग्रन्थकारों द्वारा वर्णित पाचकपित्त का स्थान, गुण, कर्मात्मक विषयों का संग्रहण करने के साथ-साथ आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित पाचक रसों से पाचक पित्त का समन्वय करना इस शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है।

शोध प्रबन्ध में पाचक पित्त विषयक विभिन्न आचार्यों के मन्तव्यों का संग्रहण कर उसके सैद्धान्तिक पक्ष को विस्तृत रूप से विवेचित कर पाचक पित्त सम्बन्धी विवेच्य विषयों का समन्वयात्मक निर्धारण किया गया है ।

इस आधार पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि पाचक पित्त की क्षय या वृद्धि से शरीर की चयापचय क्रियाओं पर सापेक्ष रूप में क्षय या वृद्धि मूलक प्रभाव पड़ता है।

शरीर क्रिया – 14

रंजक पित्त का वैज्ञानिक विवेचनात्मक अध्ययन (यकृत के परिप्रेक्ष्य में)

अध्येता	: डा. राकेश कुमार थम्मन
निर्देशक	: डा. श्रीकृष्ण शर्मा
सह-निर्देशक	: डा. महेन्द्र सिंह मीना
वर्ष	: 1996

चरकोक्त पंचदश कोष्ठांग तथा महास्रोतस् के अन्तर्गत यकृत शरीर की सबसे बड़ी ग्रन्थि है। जहां अन्तर्वर्ती चयापचय होकर भोजन का पोषकतत्व ऊतकों के उपयोग योग्य बन जाता है। यकृत का मुख्य कार्य रंजक पित्त द्वारा रस से रक्त का निर्माण, पाचन एवं चयापचय आदि से सम्बंधित है, जिसका आयुर्वेद शास्त्र में संक्षिप्त एवं सूत्र रूप में वर्णन है, जो शरीर क्रियात्मक दृष्टि से परिपूर्ण एवं विस्तृत नहीं है। अतः इनका विस्तृत अध्ययन करना ही इस शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से यकृत और प्लीहा में रक्त की उत्पत्ति गर्भावस्था में जन्म के पूर्व एक मास तक हुआ करती है, इसके पश्चात् यह कार्य रक्तमज्जा में प्रारम्भ हो जाता है जो जन्मपर्यन्त जारी रहता है। लेकिन अन्वेषणात्मक दृष्टि से स्पष्ट है कि जन्मोत्तर यद्यपि यकृत प्रत्यक्ष रूप से रक्तोत्पत्ति में भाग नहीं लेता किन्तु रक्तोत्पत्ति के कार्य में यकृत से उत्तेजना अवश्य प्राप्त होती है, जिससे रक्तकणों का नाश होने पर जो क्षति होती है उसकी पूर्ति आवश्यकतानुसार रक्तमज्जा कर सकती है।

आधुनिक विद्वानों की मान्यता है कि यकृत केवल उत्तेजना ही नहीं बल्कि पूर्ण प्रगल्भ रक्तकणों के लिए कुछ उपयोगी द्रव्य भी बनाता है। इस दृष्टि कोण से ही आजकल Pernicious Anaemia, संघातिक रक्तक्षय एवं दुष्टपाण्डु रोग के रोगियों में यकृत का प्रयोग आहार के साथ किया जाता है जिसके उचित परिणाम प्राप्त हो रहे हैं जिसका समर्थन हमारे पूर्व आचार्य भी कर चुके हैं।

शरीर क्रिया – 15

नाड़ी परीक्षान्तर्गत निर्दिष्ट नाड़ी का शरीर क्रियात्मक विवेचन

अध्येता : डा. जितेन्द्र स्वामी

निर्देशक : डा. श्रीकृष्ण शर्मा

वर्ष : 1997

आतुर व्याधि परिमोक्ष के लिए रोगनिदान एवं चिकित्सा अनिवार्य है। नाड़ी परीक्षा का उपयोग रोग निदान के सन्दर्भ में किया जाता है। नाड़ी परीक्षा से शरीर की प्राकृत एवं वैकृत दोनों ही स्थितियों का निर्धारण किया जा सकता है। नाड़ी परीक्षा विधि, गति, आकार तथा नाड़ी को प्रभावित करने वाले कारणों का संग्रह करना एवं रक्त परीक्षण, यांत्रिक परीक्षण, ई.सी.जी. आदि मानकों के साथ संबंध स्थापित किए जाने की सम्भावनाओं का पता लगाया जाना शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है।

प्रायोगिक कर्माभ्यास के अन्तर्गत कुल नब्बे स्वस्थ व्यक्तियों के परीक्षण किए गए। प्रायः सभी व्यक्तियों में द्वन्द्वज नाड़ी पाई गई एवं नाड़ी की दोषानुसार प्रकृति प्रत्येक नाड़ी परीक्षण काल में एक ही पाई गई परन्तु नाड़ी के स्पन्दनों में परिवर्तन होता रहा।

आयुर्वेद के उद्देश्य की पूर्ति के लिए त्रिविध, अष्टविध, दशविध परीक्षाओं के साथ-साथ नाड़ी परीक्षा भी निदान हेतु एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में प्रयुक्त हो सकती है।

शरीर क्रिया – 16

स्तन्य उपधातु का शरीर क्रियात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. डिग्गीलाल मीना
निर्देशक	: डा. श्रीकृष्ण शर्मा
सह-निर्देशक	: डा. महेन्द्र सिंह मीना
वर्ष	: 1997

आयुर्वेद में शरीर धातुओं का कार्य शरीर का धारण एवं पोषण माना है, लेकिन उपधातुओं का कार्य केवल धारण कर्म ही माना है। स्तन्य उपधातु सभी उपधातुओं में महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह माता के शरीर का धारण कार्य करने के साथ-साथ शिशु का पोषण भी करती है। स्तन्य के ज्ञान से जहाँ एक ओर समस्त जनसमुदाय परिचित है वहीं दूसरी ओर स्तन्य तथा स्तनपान को लेकर बहुत सी भ्रांतियाँ भी प्रचलित हैं। उक्त भ्रांतियों के निराकरण एवं आहार-विहार अवस्था, प्रकृति, वय, प्रजनन क्षमता आदि कारकों का स्तन्य की उत्पत्ति एवं प्रवृत्ति पर होने वाले शरीर क्रियात्मक प्रभावों तथा शिशु के पोषण सम्बन्धी ज्ञातव्यों के विवेचन की अवधारणा को स्पष्ट करना ही इस शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है ।

शोध अध्ययन में 28 प्रसूताओं पर अध्ययन कर विश्लेषित परिणाम द्वारा निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुआ –

- प्रस्तुत अध्ययन में वयानुसार 21-25 वय वर्ग में स्तन्य की मात्रा सर्वाधिक एवं 36-40 वय वर्ग में सबसे न्यून रही ।
- मध्यम आर्थिक स्तर की महिलाओं में स्तन्य की औसत मात्रा सर्वाधिक एवं उत्तम व निम्न आर्थिक स्तर की महिलाओं में न्यून रही ।
- शिक्षा के स्तर का स्तन्य की मात्रा पर कोई प्रभाव प्राप्त नहीं हुआ ।

- ग्रामीण माताओं में स्तन्य की औसत मात्रा उत्तम व शहरी क्षेत्र की माताओं में सबसे न्यून रही ।
- प्रथम उत्पन्न स्तन्य में कोलोस्ट्रम की मात्रा अधिक रही ।

Sharir Kriya – 17

Physiological study of Dhatu Sara in reference to Plasma Proteins

Scholar : Dr. Arun Kumar N. Rathi
Guide : Dr. Shri Krishna Sharma
Year : 1997

The prime aim of this dissertation was to co-relate the dhatu sara i.e. ojas with plasma proteins mainly albumin and globulins and to develop objective parameters to evaluate the Sara status of the individual.

For this research work 52 healthy individuals were selected and they are divided into Pravar, Madhyam & Avar Sara. In these individuals blood samples are collected for laboratory test viz. Total serum protein, Serum albumin, Serum globulin and A:G ratio.

Out of 52 selected healthy subjects, 15 were having Pravar, 25 were having Madhyam and 12 were having Avar Sara status. The laboratory test conducted shows objective parameters can be used with subjective parameters of Sara to judge the Sara status of the individual.

Sharir Kriya – 18

**The Physiological and Clinical study of Organs and Disease related
to oral cavity in special reference to Phonation**

Scholar	: Dr. Basudev Pradhan
Guide	: Dr. Shri Krishna Sharma
Co-Guide	: Dr. M.S. Meena and Dr. Vinod Suman
Year	: 1997

Now a days, among the other health problems, the oral diseases are very very common in India and abroad. It happens due to the modernise food habits, as well as sophisticated life style, secondary we do not maintain oral hygiene properly. It is a greater health problem now.

The physiological and clinical study of oral organs will be carried out. Bhadramusthadi Gutika (Bhaisajaya Ratanavali 61/15-16) was trailed on 30 patients. Prepared medicine was kept inside the mouth before going to sleep particularly at the chaladanta site for 15 days.

This medicine has very good effect in dantavesta and sausir. In danta sarkara and krimidanta this medicine effect is not so satisfactory.

This medicine maintain normal saliva secreation. It removes halosis. Patients gives report of good feeling of oral cavity throughout the day.

Sharir Kriya – 19

Evaluation of role of Pranayama in Promotion and Rehabilitation of Pulmonary Health

Scholar	: Dr. Prakash R. Chondikar
Guide	: Prof. Shri Krishna Sharma
Co-Guide	: Dr. M.S. Meena
Year	: 1999

The study of Pranayama is aimed to see its practical utility in promotion of pulmonary health in normal people & rehabilitation after chronic obstructive pulmonary diseases.

15 healthy non-smoker volunteers are selected age between 20-30 yrs. and 15 patients of chronic obstructive lung disease selected for the purpose of Pranayama.

Though Pranayama improves ventilatory functions of lung in normal healthy individual and in COPD scale like daily routine activity work tolerance. Attitude of patient towards disease improved in satisfactory significant amount.

Also Pranayama is a kind of Physiotherapy (Rehabilitative process) to lung & not a direct drug treatment which does not correct basic pathology.

शरीर क्रिया – 20

प्रकृति एवं रक्त धातु का सम्बन्ध एक वैज्ञानिक विवेचन

अध्येता : डा. प्रेम चन्द मंगल

निर्देशक : डा. महेन्द्र सिंह मीना

वर्ष : 1999

रोगी की प्रकृति निर्धारण तथा रक्त धातु से सम्बन्ध स्थापित कर आज के युग में जहाँ समय बहुमूल्य है, उसका सदुपयोग कर चिकित्सा में शीघ्र लाभ प्राप्त किया जा सकता है इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु महानिबन्ध का विषय चयनित किया गया है ।

अध्येता ने वात-पित्त, पित्त-कफ, वात-कफ प्रकृतियों का चयन किया एवं उनमें Hb gm%, TLC & DLC आदि परीक्षण किए ।

वात-कफ प्रकृति में Hb gm% सबसे अधिक पाया गया, पित्त-कफ प्रकृति में TLC count सबसे अधिक पाया गया तथा वात-पित्त प्रकृति में एवं पित्त-कफ प्रकृति में RBC count सबसे अधिक पाया गया । इस प्रकार प्रकृति एवं रक्त धातु का सामंजस्य स्थापित किया गया ।

Sharir Kriya – 21

The Physiological study of Ojus (Bala/Immunity) in relation to Prakriti & Sara

Scholar	: Dr. Munugoti Someshwar
Guide	: Dr. M.S. Meena
Co-Guide	: Dr. S.P.S. Jaijania
Year	: 1999

The main object is to study the concept of Ojus, Prakriti, Sara & Immunity and to study the relation of Bala (Immunity) in respect to Prakriti & Sara.

From ayurvedic literature references regarding the concept of Ojus, Bala, Prakriti & Sara was collected. 40 healthy individuals were selected as volunteers. Investigations related to immunity viz. Hb%, TLC, DLC, Serum protein & globulin were done in the volunteers.

Volunteers out of 40, 18 were belonging to pravarsara and 22 were to madhyamsara.

Out of 40, 15 belongs to kapha prakriti, 7 to pitta, 4 to vata, 10 to pitta kapha, 3 to vatapitta & 1 to vatakapha prakriti.

The average values obtained were -

	Pravar Sara	Madhyam Sara
TLC	5962.6/Cmm	5958/Cmm
Lymphocytes	43.15%	41.7%
Serum protein	7.28 gm%	6.83 gm%
Serum globulin	2.78 gm%	2.5 gm%

It indicates the status of sara plays an important role in maintaining immunity status.

शरीर क्रिया – 22

शुक्रवह स्रोतस् का शरीर क्रियात्मक अध्ययन एवं तत् परिप्रेक्ष्य में कतिपय द्रव्यों
का शुक्रवह स्रोतस् पर प्रभावात्मक अध्ययन

अध्येता : डा. गोविन्द प्रसाद गुप्ता
निर्देशक : डा. महेन्द्र सिंह मीना
सह-निर्देशक : डा. ओम प्रकाश दाधीच
वर्ष : 2001

वर्तमान व्यस्त जीवन शैली में विषम दिनचर्या, मिथ्या आहार-विहार, व्यसन और मानसिक तनाव के कारण पुरुष के शुक्रवह स्रोतस् की दुष्टि से शुक्राणुहीनता, अल्पता, सन्तानहीनता, दुर्बलता आदि भावों की वृद्धि हो रही है, इनकी कमी करना इस शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है ।

शुक्रहीनता या अल्पता के 24 आतुरों का चयन परीक्षणोपरान्त किया गया तथा इनके 3 वर्ग किए गए एवं उन्हें 1 माह तक औषधि दी गई ।

औषधि : शतावरी, अश्वगंधा, गोक्षुर, आँवला, विदारीकन्द – समभाग + समभाग मिश्री + 1/50 भाग कोको पाउडर

मात्रा : 2 कर्ष

सहपान : 2 भाग मधु + 1 भाग घृत

वर्ग अ : Sperm count 100 million से कम – 10 रोगी

वर्ग ब : Sperm count 60 million से कम – 8 रोगी

वर्ग स : Sperm count 10 million से कम – 6 रोगी

औषधि सेवनोपरान्त निम्न परिणाम प्राप्त हुए –

	शुक्र आयतन	शुक्राणु संख्या	शुक्राणु गतिशीलता
वर्ग अ	उत्तम वृद्धि	उत्तम वृद्धि	न्यून वृद्धि
वर्ग ब	मध्यम वृद्धि	अतिन्यून वृद्धि	न्यून वृद्धि
वर्ग स	मध्यम वृद्धि	न्यून वृद्धि	न्यून वृद्धि

चयनित रोगियों में परीक्षणोपरान्त शुक्र आयतन, शुक्राणुओं की संख्या व गतिशीलता में वृद्धि हुई ।

शरीर क्रिया – 23

समान वायु का वैज्ञानिक विवेचन तथा इसके कर्मों पर कतिपय द्रव्यों का गुणकर्मात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. कमलेश कुमार शर्मा
निर्देशक	: डा. महेन्द्र सिंह मीना
सह-निर्देशक	: डा. ओम प्रकाश दाधीच
वर्ष	: 2001

आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित समान वायु का स्थान, कर्मादि का वैज्ञानिक विवेचन और इसके कर्मों पर कतिपय द्रव्यों का उपयोग सिद्ध करना इस शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है।

इस अध्ययन हेतु 20 आतुरों का चयन किया गया तथा उनको औषधि के रूप में पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, शुण्ठी, हरीतकी, अम्लवेतस, मरिच, अजवायन, सैधव, विडलवण तथा हिंगु का चूर्ण बनाकर 3 ग्राम प्रातः सायं घृत के साथ 15 दिन तक सेवन कराया गया।

औषधि प्रयोग से समान वायु विकृतिजन्य विकारों में निम्नानुसार लाभ मिला –
विबंध, आस्योपदेहमाधुर्य, कण्ठास्यशोष, मनसः सदन, अतिसार, उत्क्लेश, अपाचन, आस्यवैरस्य, अरुचि, आन्त्रकूजन, उदरस्तैमित्य, अग्निमांद्य, ष्ठीवन, उद्गार, वैवर्ण्य, आध्मान, विलम्ब पाक, कम्प तथा विदाह में क्रमशः 75.00, 66.66, 61.90, 58.33, 57.14, 57.14, 56.75, 55.00, 54.05, 53.57, 53.58, 52.77, 50.00, 50.00, 50.00, 45.23, 43.18, 00.00, 00.00 प्रतिशत।

समान वायु विकृतिजन्य विकारों में उपर्युक्त औषधि योजना निरूपद्रव एवं उपयुक्त रही।

शरीर क्रिया – 24

अर्जुन, अश्वगन्धा, आमलकी का व्यान वायु के रससंवहन कर्म पर प्रभावात्मक
अध्ययन

अध्येता	: डा. उपाध्याय भास्कर
निर्देशक	: डा. महेन्द्र सिंह मीना
सह-निर्देशक	: डा. ओम प्रकाश दाधीच
वर्ष	: 2001

व्यान वायु के रससंवहन कर्म को साम्यावस्था में लाने हेतु अर्जुन, अश्वगन्धा, एवं आमलकी का संयुक्त चूर्ण रूप में (पार्थयादि योग) प्रयोग कर परिणामों को जानना तथा हृदय एवं रससंवहन के बारे में अभ्रान्त जानकारी देना इस शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है ।

इस अध्ययन हेतु 20 आतुरों का चयन किया गया, जिनमें उच्च रक्त चाप के 11 व निम्न रक्त चाप के 9 आतुर थे ।

औषधि के रूप में पार्थयादि योग (अर्जुन, अश्वगन्धा, आमलकी एवं शर्करा – समभाग) को 3 ग्राम मात्रा में प्रातः सायं मधु एवं दुग्ध अनुपान से 15 दिन से 1 माह की अवधि तक सेवन कराया गया ।

पार्थयादि योग उच्च रक्तचाप वाले आतुरों में 55 प्रतिशत तथा निम्न रक्त चाप वाले आतुरों में 45 प्रतिशत लाभकारी रहा है, जो व्यान वायु के रससंवहन कर्म में सार्थकता को सिद्ध करता है ।

शरीर क्रिया – 25

भ्राजक पित्त के भ्राजकत्व कर्म की क्रिया विकृति शिवत्र रोग के परिप्रेक्ष्य में
शशिलेखा वटी एवं तुत्थाश्च्योतन लेप का गुणकर्मात्मक अध्ययन

अध्येता : डा. अशोक कुमार शर्मा

निर्देशक : डा. महेन्द्र सिंह मीना

सह-निर्देशक : डा. ओम प्रकाश दाधीच

वर्ष : 2001

वर्तमान में भौतिक विलासितावादी व्यस्त युग में मानव अर्थलिप्सा एवं स्वार्थपरकतारूपी कुरीतियों से ग्रसित होकर उन निदानों का सेवन करता है जो कुष्ठ (शिवत्र) को उत्पन्न करते हैं । अतः इस रोग में भ्राजक पित्त की भ्राजकत्व क्रिया को साम्यावस्था में लाकर रोग निवृत्ति का प्रयास करना, अध्येता का उद्देश्य है ।

कार्य योजना में 50 रोगियों को 4 वर्गों में आयु के आधार पर वर्गीकृत कर शशिलेखा वटी 250 मि.ग्रा. (योगरत्नाकर, कुष्ठचिकित्सा) तथा बाकुची तैल (2 बूंद) का प्रयोग शहद से प्रातः सायं 3 माह तक कराया गया तथा तुत्थाश्च्योतन लेप (सिद्धभेषजमणिमाला, कुष्ठरोगचिकित्सा/875-876) का प्रयोग कराया गया ।

औषध लाभ वर्ग अ (1 से 15 वर्ष) में सर्वाधिक 70.65 प्रतिशत, वर्ग ब (16 से 30 वर्ष) में 58.33 प्रतिशत, वर्ग स (31 से 45 वर्ष) में 56.25 प्रतिशत तथा वर्ग द (46 से 60 वर्ष) में 56.25 प्रतिशत पाया गया ।

शरीर क्रिया – 26

मेदोऽग्नि विकृतिजन्य स्थौल्य रोग के परिप्रेक्ष्य में लेखनीय महाकषाय का

प्रभावात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. रेखराज मीना
निर्देशक	: डा. महेन्द्र सिंह मीना
सह-निर्देशक	: डा. ओम प्रकाश दाधीच
वर्ष	: 2001

अग्नि की महत्ता को प्रदर्शित करने के लिए इस विषय का चयन किया गया है। अग्नियों में मेदोऽग्नि की मंदता से स्थौल्य रोग उत्पन्न होता है। स्थौल्य रोग निवारणार्थ चरकसंहितोक्त पचास महाकषायों में से लेखनीय महाकषाय (च.सू. 4/9) के द्रव्यों का चयन कर घनवटी के रूप में प्रयुक्त किया गया है। इस योग के द्रव्यों के दीपन-पाचन, मेदोघ्न व कफनाशक कर्मों को सिद्ध करना इस शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है।

इस अध्ययन के लिए लिंगानुसार, आयु के अनुसार, आनुवंशिकता के अनुसार तथा बीएमआई के आधार पर कुल 27 रोगियों का चयन किया गया। औषध 1.5 ग्राम मात्रा में प्रातः सायं 2 माह तक, मधु या उष्ण जल से दी गई। लक्षणों की तीव्रता तथा उपशमन के आधार पर रोगियों का परीक्षण किया गया।

अनुसंधानार्थ चयनित सभी आतुरों में HDL बढ़ा तथा Serum cholesterol, LDL, VLDL, Triglyceride की value घटी।

आतुरों में औषध प्रयोग से भार ह्रास हुआ। उत्तम लाभ 3.70% आतुरों में, मध्यम लाभ 18.52% आतुरों में, सामान्य लाभ 23.93% आतुरों में तथा 51.85% आतुरों में अल्प लाभ रहा।

इस प्रकार प्राप्त परिणामों के आधार पर लेखनीय महाकषाय स्थौल्य में कफनाशक, मेदधातुक्षपणक एवं मेदसाऽग्निवर्धक होने से मध्यम परिणाम देने वाला है।

शरीर क्रिया – 27

श्लेषक कफ क्रिया विकृतिजन्य सन्धिगत रोगों में एरण्डपाक का प्रभावात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. दरब सिंह
निर्देशक	: डा. महेन्द्र सिंह मीना
सह निर्देशक	: डा. ओम प्रकाश दाधीच
वर्ष	: 2001

सन्धिगत रोगों से पीडित रोगी वर्तमान में अधिक देखे जा रहे हैं । आयुर्वेद में संशोधन एवं शमन दो प्रकार की चिकित्सा निर्दिष्ट है, जिसमें संशोधन श्रेष्ठ है । एरण्ड पाक से संशोधन और शमन दोनों प्रकार की चिकित्सा सन्धिगत रोगों की होती है । सन्धिगत रोगों में एरण्ड पाक से दोनों प्रकार की चिकित्सा का अध्ययन करना ही इस शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है ।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शोधकर्ता ने कुल 20 रोगियों का चयन कर, उन्हें 2 वर्गों में विभक्त किया –

वर्ग “अ” में शास्त्र सम्मत आहार–विहार 10 रोगियों को दिया गया ।

वर्ग “ब” में एरण्ड पाक (योगरत्नाकर, वातव्याधिचिकित्सा) का प्रयोग तथा शास्त्र सम्मत आहार–विहार 10 रोगियों को दिया गया तथा औषध का प्रयोग 10 से 20 ग्राम मात्रा में प्रातः सायं उष्ण जल व दूध के साथ 45 दिन तक किया गया ।

45 दिनों पश्चात् वर्ग “अ” के रोगियों को उत्तम लाभ 20%, मध्यम लाभ 80%, तथा लक्षणों में लाभ 67.41% रहा । वर्ग “ब” के रोगियों को उत्तम लाभ 70% तथा मध्यम लाभ 30% तथा लक्षणों में लाभ 64.14% रहा । औषध प्रयोग से औसत लाभ 65.77% रहा है । साथ में पथ्य का प्रयोग अधिक लाभप्रद देखा गया है ।

शरीर क्रिया – 28

प्राणवह स्रोतस् क्रिया विकृति जन्य श्वास रोग में श्वासहर महाकषाय का प्रभावात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. पृथ्वीराज मीना
निर्देशक	: डा. महेन्द्र सिंह मीना
सह निर्देशक	: डा. ओम प्रकाश दाधीच
वर्ष	: 2001

आधुनिक युग में विकृत पर्यावरण, विकृत अन्न-जल, विकृत आहार-विहार के कारण प्राणवह स्रोतस् विकृत हो जाता है । प्राणवह स्रोतस् के बारे में तथा इसकी क्रिया विकृति से उत्पन्न श्वास रोग के बारे में सम्पूर्ण अध्ययन करना एवं इस पर चरकोक्त श्वासहर महाकषाय (च.सू. 4/16) घन वटी का प्रयोग कर शरीर क्रियात्मक अध्ययन करना इस शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है ।

इस अध्ययन के लिए शोधकर्ता ने कुल 20 रोगियों का चयन किया तथा 2 वर्गों में विभक्त कर उन्हें 3 ग्राम मात्रा में औषध प्रातः सायं उष्ण जल से 60 दिन तक दी ।

वर्ग अ में आतुरों को लाभ या विविध लक्षणों पर हुए लाभ का औसत 48.96% रहा ।

वर्ग ब में आतुरों को लाभ या विविध लक्षणों पर हुए लाभ का औसत 53.19% रहा ।

वर्ग अ एवं वर्ग ब में संयुक्त आतुरों को औसत लाभ 51.08 % रहा । शोध अध्ययन के उक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि श्वासहर महाकषाय द्वारा निर्मित घन वटी का श्वास के रोगियों में प्रयोग अधिक लाभप्रद रहा ।

शरीर क्रिया – 29

रक्त निर्माण प्रक्रिया का शरीर क्रियात्मक अध्ययन एवं तत् परिप्रेक्ष्य में चतुर्षष्ठी प्रहरी

पिप्पली एवं लौहभस्म का तुलनात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. नीरज कुमार शर्मा
निर्देशक	: डा. महेन्द्र सिंह मीना
सह निर्देशक	: डा. ओम प्रकाश दाधीच
वर्ष	: 2002

भारत वर्ष में प्रतिवर्ष रक्ताल्पता से मृत्यु दर की संख्या 19 शिशु प्रति हजार है। कुपोषण जनित रक्ताल्पता से महिलाएं मुख्यतया प्रभावित हैं। अमेरिका की तुलना में भारत में औसत आयु 52–62 वर्ष है। उक्त स्थिति को देखते हुए शोधकर्ता ने इस विषय का चयन किया है।

इस अध्ययन के लिए शोधकर्ता ने 3 वर्गों में आतुरों का चयन किया तथा प्रत्येक वर्ग में 10 आतुर रखे। उन्हें 45 दिन तक औषधि दी गई।

प्रथम वर्ग – चतुर्षष्ठी प्रहरी पिप्पली (छोटी पिप्पली व पिप्पली फाण्ट समभाग लेकर 64 प्रहर तक मर्दन कर निर्मित की गई) – 500 मि.ग्रा. प्रातः एवं सायं मधु के साथ।

द्वितीय वर्ग – लौह भस्म (रसरत्नसमुच्चय 5/126) 250 मि.ग्रा. प्रातः एवं सायं मधु के साथ।

तृतीय वर्ग – उक्त दोनों का सेवन कराया।

प्रथम वर्ग को 79.41% तथा द्वितीय वर्ग को 68.79% लाभ प्राप्त हुआ। जबकि तृतीय वर्ग को 85.71% लाभ प्राप्त हुआ।

चतुर्षष्ठी प्रहरी पिप्पली Intrinsic factor व लौहभस्म Extrinsic factor के रूप में कार्य करती है। भोजन में रक्तपोषकांश की कमी से होने वाले रक्तक्षय में लौहभस्म का प्रयोग एवं अग्निविकृति के कारण धातु निर्माण प्रक्रिया में बाधा से होने वाले रक्तक्षय में उक्त औषधियों के सार्थक परिणाम प्राप्त हुए हैं।

शरीर क्रिया – 30

पित्तशमन में आमलकी रसायन एवं मुक्तापिष्टी की कार्मुकता का तुलनात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. बालकृष्ण पंवार
निर्देशक	: डा. महेन्द्र सिंह मीना
सह निर्देशक	: डा. ओम प्रकाश दाधीच
वर्ष	: 2002

वर्तमान समय में मनुष्य अत्यधिक तीक्ष्ण, उष्ण, कटु, अम्ल रस एवं पर्युषित आहार का सेवन करता है । जिसके कारण पित्त विकृतिजन्य लक्षण उत्पन्न होते हैं, इस हेतु पित्तशमन के लिए मधुर, तिक्त, कषाय रस तथा शीत वीर्य वाली औषध, आहार एवं विहार का निर्देश किया है । अतः इसी दृष्टि को ध्यान में रखते हुए अध्येता ने आमलकी रसायन और मुक्तापिष्टी का प्रयोग किया है । ये दोनों योग मधुर, तिक्त, कषाय एवं शीतवीर्य होने के कारण पित्तशमन करते हैं । इन योगों को अनुसंधान की कसौटी पर परखना ही शोधकर्ता का उद्देश्य है ।

शोधकर्ता ने 30 रोगियों का चयन कर उन्हें 3 वर्गों में विभक्त किया ।

प्रथम वर्ग में – आमलकी रसायन (रसतंत्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह, द्वि. खण्ड, रसायन वाजीकरण प्रकरण) 2 ग्राम सुबह, शाम मधु से ।

द्वितीय वर्ग में – मुक्तापिष्टी (रस-तरंगिणी 23/71) 125 मि.ग्रा. सुबह, शाम जल से ।

तृतीय वर्ग में – दोनों का प्रयोग । औषधि प्रयोग अवधि 30 दिन तक रखी गई ।

पित्त प्रकोप में आमलकी रसायन के परिणाम 54.54%, मुक्तापिष्टी के परिणाम 58.41% तथा दोनों के संयुक्त प्रयोग से परिणाम 70.37% रहा ।

आमलकी रसायन की अपेक्षा मुक्तापिष्टी श्रेष्ठ कार्यकारी औषध है । दोनों औषधियों के संयुक्त प्रयोग से उत्कृष्ट परिणाम प्राप्त हुए । अतः पित्त प्रकोप की अवस्था में दोनों औषधियों का संयुक्त प्रयोग करना चाहिए ।

शरीर क्रिया – 31

मूत्र निर्माण प्रक्रिया का शरीर क्रियात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. श्यामलाल शर्मा
निर्देशक	: डा. महेन्द्र सिंह मीना
सह निर्देशक	: डा. एस.पी.एस. जयजानिया
वर्ष	: 2002

नवीन आहार का ग्रहण, पोषक धातुओं की स्थिति तथा मलरूपों का विसर्जन ये तीनों जैविक क्रियाएं स्रोतों के माध्यम से अनवरत रूप से होती रहती हैं । मलों के रूप में मूत्र का स्थान सर्वप्रथम आता है । शरीर में होने वाली चयापचय क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न हुए मूत्र का देह से बाहर निकलना स्वास्थ्य की दृष्टि से अनिवार्य है । मूत्ररूपी मल के उत्सर्जन के लिए मूत्रवह स्रोतस् होता है । राजस्थान जैसे प्रदेश में मूत्र निर्माण प्रक्रिया से सम्बन्धित व्याधियाँ प्रायः अधिक होती हैं । अतः विषय की संदिग्धता को दूर करने तथा विषय को अधिक स्पष्ट करने के लिए पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान द्वारा संज्ञित Urinary system का अध्ययन करने हेतु प्रस्तुत विषय का चयन किया गया है ।

इस शोध प्रबन्ध में मूत्रवह स्रोतस्, बस्ति, मूत्रनिर्माण प्रक्रिया आदि विषयों का आयुर्वेदिक साहित्य एवं पाश्चात्य ग्रन्थों से शरीर क्रियात्मक अध्ययन किया गया है ।

मूत्र की उत्पत्ति आहार से होती है । मूत्र के संघटकों का निर्माण आहारगत अंशों के द्वारा ही यकृतादि भिन्न भिन्न स्थलों पर होता है । पश्चात् वृक्कों द्वारा रक्तमिश्रित त्याज्य पदार्थ छानकर गवीनियों के द्वारा मूत्राशय में पहुँचा दिए जाते हैं, वहां उनकी मूत्र संज्ञा होती है । यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ ।

शरीर क्रिया – 32

मन के मेध्य कर्म के संदर्भ में वयःस्थापन महाकषाय का प्रयोगात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. रवि प्रकाश शर्मा
निर्देशक	: डा. महेन्द्र सिंह मीना
सह निर्देशक	: डा. ओम प्रकाश दाधीच
वर्ष	: 2002

प्रतियोगिता के इस युग में व्यक्ति मानसिक दबाव व तनाव के कारण विषादग्रस्त रहता है । इसका दूरगामी प्रभाव शारीरिक एवं मानसिक विकारों में परिलक्षित होता है । एतदर्थ वयःस्थापन महाकषाय का चयन किया गया। इस महानिबन्ध का उद्देश्य वयःस्थापन महाकषाय के मेध्य प्रभावजन्य कर्म का प्रयोगात्मक अध्ययन करना है ।

वयःस्थापन महाकषाय चूर्ण (च.सू. 4/18 में वर्णित घटक द्रव्य + सम भाग चीनी) का स्वस्थातुरों में दो आयु वर्गों में प्रयोग किया गया । प्रथम वर्ग अ में 20 शिक्षित युवा लिए गए । द्वितीय वर्ग ब में 20 शिक्षित बालक लिए गए । औषधि मात्रा 10 ग्राम रखी गई। औषधि को प्रातः सायं दूध के साथ दो माह तक सेवन करवाया गया ।

इन दोनों वर्गों में मानकीकृत मनोवैज्ञानिक परीक्षण किए गए ।

वर्ग अ तथा वर्ग ब में बुद्धि लब्धि में क्रमशः 9.006% तथा 14.27% वृद्धि अंकित की गई ।

मेध्य आदि औषधियों का प्रयोग आचार रसायन के साथ-साथ यम नियम का सतत सेवन करते हुए अपेक्षित परिणाम दे सकता है । काल की दृष्टि से इसका प्रयोग छः माह से एक साल तक किया जाना चाहिए ।

शरीर क्रिया – 33

मेदोधातु का शरीर क्रियात्मक अध्ययन एवं मेदोवृद्धि के परिप्रेक्ष्य में गुग्गुलु रसायन का प्रभावात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. नरेश कुमार गुप्ता
निर्देशक	: प्रो. महेन्द्र सिंह मीना
सह निर्देशक	: डा. ओम प्रकाश दाधीच
वर्ष	: 2003

आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित सप्तधातुओं में से एक मेदोधातु का शरीर क्रियात्मक अध्ययन एवं चरकसंहिता के अष्टौनिन्दतीय अध्याय में वर्णित स्थौल्य तथा मेदोधातु वृद्धि का विवेचन एवं मेदोवृद्धि में गुग्गुलु रसायन का उपयोग देखना ही इस महानिबन्ध का उद्देश्य है ।

शोधकर्ता ने 45 आतुरों का चयन कर उन्हें 2 वर्गों में विभक्त किया । औषध के रूप में गुग्गुलु रसायन (भारतभैषज्यरत्नाकर, द्वितीय भाग, पृ. 1327) के 500 मि.ग्रा. के 2-2 कैप्सूल प्रातः सायं 2 माह तक दिए गए । अनुपान में मधु एवं उष्ण जल का उपयोग किया गया ।

वर्ग अ में औषधाभाष सेवन एवं पथ्यापथ्य सेवन –15 रोगियों को कराया गया ।

वर्ग ब में औषध सेवन तथा पथ्यापथ्य सेवन – 30 रोगियों को कराया गया ।

चिकित्सा पश्चात् 60 दिन में आतुरों में भार की कमी देखी गई । वर्ग अ के आतुरों के लक्षणों में औसत लाभ 6.44 प्रतिशत प्रति आतुर हुआ जो कि अलाभ की श्रेणी में आता है । वर्ग ब के आतुरों के लक्षणोपशमन में निम्न लाभ हुआ :-

	आतुर	प्रतिशत
उत्तम	4	13.4
मध्यम	16	53.4
सामान्य	8	26.6
अल्प	2	6.6
	---	---
	30	100

इस प्रकार प्राप्त परिणामों के आधार पर गुग्गुलु रसायन मेदोवृद्धि में कफवात शामक, मेदोधातु क्षणक एवं मेदो अग्निवर्धक होने से मध्यम सार्थक परिणाम देने वाला है ।

शरीर क्रिया – 34

रसधातु क्षयजन्य कार्श्य रोग के परिप्रेक्ष्य में कतिपय बृंहणीय द्रव्यों का प्रभावात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. किशोरीलाल शर्मा
निर्देशक	: प्रो. महेन्द्र सिंह मीना
सह निर्देशक	: डा. ओम प्रकाश दाधीच
वर्ष	: 2003

वस्तुतः कार्श्य रोगी में धातुक्षय के कारण शारीरिक क्षमता में कमी आ जाती है। इसके फलस्वरूप वह अत्यधिक शीतता एवं उष्णता को सहन नहीं कर सकता है तथा कार्श्य रोगी सामान्य व्यक्ति की तरह व्यायाम एवं अन्य शक्ति वाले कार्य नहीं कर सकता है। आयुर्वेद संहिताओं में वर्णित कतिपय द्रव्यों की कार्श्य रोग में संतर्पण चिकित्सा सिद्धान्तानुरूप धातुवृद्धि परक कार्मुकता का निर्धारण ही अध्येता के विषय चयन का उद्देश्य है।

अध्येता ने 16 वर्गों में आतुरों का चयन किया एवं प्रत्येक वर्ग में 22 आतुर रखे। बृंहणीय द्रव्यों (अश्वगंधा, शतावरी, विदारीकंद, गोक्षुर, बला, अतिबला तथा आमलकी) में गुडूची स्वरस की 3 भावना देकर प्रातः, सायं चूर्ण रूप में रोगियों को सेवन करवाया गया। वयस्कों में 10 ग्राम एवं बच्चों में 5 ग्राम चूर्ण की औषध मात्रा प्रातः, सायं रखी गई। अनुपान क्षीरपाक दिया गया तथा अवधि 60 दिन रखी गई।

लक्षणों की तीव्रता में उपशमन के आधार पर प्रति आतुर औसत लाभ 47.56% रहा तथा आतुरों के औसत भार में वृद्धि का लाभ 43.20% रहा। प्राप्त परिणाम के आधार पर बृंहणीय योग रसधातु क्षयजन्य कार्श्य में वातपित्तशामक, मांसवर्धक एवं अग्निवर्धक होने से मध्यम सार्थक परिणाम देने वाला है।

शरीर क्रिया – 35

आलोचक पित्त का शरीर क्रियात्मक अध्ययन एवं प्रथम पटल तिमिर में कल्पित चक्षुष्य
योग का प्रभावात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. अजय कुमार शर्मा
निर्देशक	: प्रो. महेन्द्र सिंह मीना
सह निर्देशक	: डा. ओम प्रकाश दाधीच
वर्ष	: 2003

ज्ञानेन्द्रियों में नेत्र मुख्य स्थान रखता है । इस कारण इसकी रक्षा करना सर्वप्रथम उद्देश्य है । अतः इसकी रक्षार्थ प्रयास जरूरी होने के कारण इस व्याधि का चयन किया गया है । नेत्र रोग में प्रथम पटलगत तिमिर में औषध देकर व्याधिहरण करना ज्यादा उपयुक्त है, क्योंकि उत्तरोत्तर अवस्थाओं में यह व्याधि कृच्छ्रसाध्य अथवा असाध्य हो जाती है । अतः नेत्र की रक्षा करना ही अध्येता के विषय चयन का उद्देश्य है ।

इस अध्ययन के लिए अध्येता ने 30 आतुरों का चयन किया । इन आतुरों को कल्पित चक्षुष्य योग (घटक द्रव्य – त्रिफला, त्रिकटु, मुलेठी, दालचीनी, विडङ्ग, नीलकमल, निर्मलीफल, भृंगराज, लौह भस्म, अभ्रक भस्म) का सेवन 2 ग्राम प्रातः सायं 60 दिन तक करवाया गया तथा अनुपान शहद एवं गोघृत दिया गया । आतुर चयन आलोचक पित्त विकृतिजन्य प्रथम पटलगत तिमिर रोग में रोग के लक्षण, दूर देखने की दृष्टि शक्ति, नजदीक दृष्टि शक्ति के आधार पर किया गया ।

कल्पित चक्षुष्य योग का प्रयोग करने पर 6.66% आतुरों को उत्तम लाभ, 46.66% को मध्यम लाभ, 43.33% को अल्प लाभ तथा 3.33% आतुरों को अलाभ रहा है । कुल औसत लाभ 48.17% प्राप्त हुआ ।

शरीर क्रिया – 36

शुक्रवह स्रोतस् का शरीर क्रियात्मक अध्ययन एवं तद् विकृति 'रेतोदोषोद् भवं क्लैव्यं'
(च.चि. 30/153) सूत्र के परिप्रेक्ष्य में 'माषादि योग' (क) का प्रभावात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. मदनमोहन शर्मा
निर्देशक	: प्रो. महेन्द्र सिंह मीना
सह निर्देशक	: डा. ओम प्रकाश दाधीच
वर्ष	: 2003

शुक्रवह स्रोतस् स्त्री-पुरुष में पृथक्-पृथक् महत्व रखते हैं, इनके विषयों पर अधिक अध्ययन करने के पश्चात् भी इनकी स्त्री-पुरुषगत क्रिया संबंधी वैज्ञानिकता स्पष्ट नहीं है । अतः शुक्र, शुक्र का प्रधान कर्म, शुक्रवह स्रोतो मूल संबंधी अनुसंधान कर 'माषादि योग' का प्रभावात्मक अध्ययन करना अध्येता का उद्देश्य है ।

राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान के बहिरंग विभाग से 25 रोगियों का चयन कर कल्पित-माषादि योग (घटक द्रव्य – उड़द, सफेदमूसली, तालमखाना, कौंच, मुलेठी, जीराद्वय, त्रिफला, कुचला, अकरकरा आदि कुल 31 द्रव्यों का अवलेह) की 5-10 ग्राम की मात्रा दिन में 2 बार दूध के अनुपान से दो माह तक दी गई ।

शुक्रवह स्रोतस् के मूल चरकोक्त वृषण एवं मेद्रे को ही मानना चाहिए । शुक्रधातु आधुनिक Testosterone hormone है ।

'माषादि योग' के प्रयोग से शुक्रमात्रा, शुक्राणुगति, शुक्राणु संख्या में वृद्धि क्रमशः 92%, 80%, 88% आतुरों में हुई व शुक्राणु द्रवीकरण समय में वृद्धि 60% आतुरों में पाई गई ।

शरीर क्रिया – 37

स्त्री जननांगों की क्रिया विकृतिजन्य बन्ध्यत्व में कल्पित प्रजास्थापन योग (चूर्ण) एवं गुडूच्यादि तैल (उत्तर बस्ति) का प्रभावात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. सीमा उपाध्याय
निर्देशक	: प्रो. महेन्द्र सिंह मीना
सह निर्देशक	: डा. सुशीला शर्मा
वर्ष	: 2003

बन्ध्या स्त्री को समाज एवं परिवार में यथोचित स्थान नहीं मिलता । प्रजनन संस्थान की क्रिया विकृतिजन्य बन्ध्यत्व का कारण वातदुष्टि, दौर्बल्यता आदि हैं । इसकी चिकित्सा वातज योनिव्यापद् के समान है । प्रजास्थापन योग (चूर्ण) कल्पित (घटक द्रव्य – बला, अतिबला, नागकेशर, मुलेठी, वटांकुर, हरीतकी, शतावरी, शिवलिंगी, पलाश गोंद, मिश्री एवं दूर्वा) एवं गुडूच्यादि तैल (च.चि. 30/59–60) की बस्ति से बन्ध्यत्व रोग को दूर करना तथा इसका प्रभावात्मक अध्ययन करना ही इस शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है ।

कार्य योजना में शोधकर्ता ने 30 आतुरों का चयन कर उन्हें 2 वर्गों में बांटा ।

वर्ग “अ” में प्रजास्थापन योग + गुडूच्यादि तैल का पिचु धारण कराया गया ।

वर्ग “ब” में प्रजास्थापन योग + गुडूच्यादि तैल की उत्तर बस्ति दी गई ।

प्रजास्थापन योग को 5 ग्राम मात्रा में प्रातः, सायं मधु व घृत के साथ ऋतुकाल में 10 दिन तक दिया गया, साथ ही 3–5 मि.लि. गुडूच्यादि तैल का पिचु तथा 3–5 मि.लि. गुडूच्यादि तैल की उत्तर बस्ति दी गई । औषध प्रयोग अवधि 5 माह रखी गई ।

वर्ग अ को 20% तथा वर्ग ब को 30% लाभ प्राप्त हुआ । गुडूच्यादि तैल की उत्तर बस्ति अधिक प्रभावी सिद्ध हुई ।

शरीर क्रिया – 38

त्वक् उपधातु का वैज्ञानिक विवेचन एवं त्वक् विकृति जन्य शिवत्र (VITILIGO) के परिप्रेक्ष्य में शिवत्रकुष्ठारि रस एवं आरग्वधाद्य तैल का प्रभावात्मक अध्ययन

अध्येता : डा. नन्दकिशोर दाधीच

निर्देशक : प्रो. महेन्द्र सिंह मीना

वर्ष : 2004

शिवत्र एक ऐसी व्याधि है जो शारीरिक दुःख न देकर मानसिक दुःख देती है। यह शरीर में विशिष्ट विकार उत्पन्न नहीं करती परन्तु सौन्दर्य नष्ट होने से मानसिक वेदना देती है। साथ ही रोगी समाज से उपेक्षित होने से मानसिक पीडा से त्रस्त रहता है। इसलिए ऐसी व्याधि में रोगी को सरलतम उपचार दिया जाना ही प्रस्तुत महानिबन्ध का मुख्य उद्देश्य है।

इस अध्ययन हेतु 30 आतुरों का चयन कर वय के आधार पर उन्हें 4 वर्गों में विभक्त किया –

वर्ग अ : 1–15 वर्ष – 10 रोगी

वर्ग ब : 16–30 वर्ष – 12 रोगी

वर्ग स : 31–45 वर्ष – 06 रोगी

वर्ग द : 46–60 वर्ष – 02 रोगी

औषध के लिए शिवत्रकुष्ठारि रस (रसरत्नसमुच्चय 20/168) तथा आरग्वधाद्य तैल (चक्रदत्त 50/122) का शास्त्रीय आधार पर चयन किया गया। शिवत्रकुष्ठारि रस 250 मि.ग्रा. युवा आतुरों में प्रातः मध्याह्न सायं तथा बाल आतुरों में प्रातः सायं शहद के साथ दिया गया तथा आरग्वधाद्य तैल को आवश्यकतानुसार बाह्य प्रयोगार्थ दिया गया। औषध प्रयोग की सीमा तीन माह निर्धारित की गई।

वर्ग अ, ब, स एवं द के आतुरों को क्रमशः 70%, 60.42%, 70.83% एवं 62.50% लाभ प्राप्त हुआ। इस प्रकार इस योग का शिवत्र रोग में उत्तम परिणाम प्राप्त हुआ। शिवत्रकुष्ठारि रस एवं आरग्वधाद्य तैल द्वारा पित्त एवं कफ का प्रशमन, स्रोतोसंग का नाश, मैलेनोसाइट्स की उत्तेजना में वृद्धि होकर मैलेनिन निर्माण में वृद्धि तथा त्वचा स्थित रक्त प्रवाह में वृद्धि होकर शिवत्र रोग का शमन होता है।

शरीर क्रिया – 39

धातुपोषण विकृति जन्य स्थौल्य रोग में स्थौल्यहर योग (कल्पित)का प्रभावात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. राकेश पाराशर
निर्देशक	: प्रो. महेन्द्र सिंह मीना
वर्ष	: 2004

आयुर्वेदोक्त नियमों का पालन न करने तथा विविध प्रकार के मिथ्या आहार—विहार का सेवन करने से व्यक्ति पोषण विकृतिजन्य स्थौल्य रोग से ग्रसित हो रहा है । आचार्य चरक ने इसे निन्दनीय व आयुह्रासक तथा सुश्रुत ने गर्हित रोग की संज्ञा दी है । इस रोग से पीडित रोगी अधिक संख्या में मिलने के कारण इस रोग पर प्रभावी औषध उपलब्ध कराना ही इस शोध प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य है ।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए Body mass index के आधार पर कुल 30 रोगियों का चयन किया गया । स्थौल्यहर योग कल्पित (घटक द्रव्य – कान्त लौह भस्म, यवक्षार, त्रिफला, त्रिकटु, एवं त्रिमद) के 500 मि.ग्रा. के 2 कैप्सूल दिन में दो बार सुखोष्ण जल से 3 माह तक सेवन करवाए गए ।

तीन माह पश्चात् लक्षणोपशमन के आधार पर आतुरों में उत्तम लाभ 3 को, मध्यम लाभ 19 को, सामान्य लाभ 5 को, अल्प लाभ 1 को, अलाभ 2 आतुरों को प्राप्त हुआ । कुल औसत लाभ 53.88% प्राप्त हुआ । स्थौल्य रोग में स्थौल्यहर योग (कल्पित) मेदोऽग्निवर्धक, मेदधातु क्षपण करने वाला तथा कफ वात शामक होने से मध्यम सार्थक परिणाम वाला रहा है ।

शरीर क्रिया – 40

रक्तधातु का वैज्ञानिक विवेचन एवं तत् विकृति जन्य युवान पिडिका (Acne Vulgaris) पर वर्ण्य महाकषाय घनवटी एवं चन्द्रप्रभा लेप (कल्पित) का प्रभावात्मक अध्ययन ।

अध्येता : डा. दिनेश चन्द्र शर्मा

निर्देशक : प्रो. महेन्द्र सिंह मीना

वर्ष : 2004

रक्तज रोगों से अधिकांश मानव समूह पीडित है तथा आधुनिक युग में विभिन्न सौन्दर्य संसाधनों के प्रचार-प्रसार एवं विज्ञापनों से प्रभावित होकर युवापीडी भ्रमित होकर विभिन्न रासायनिक द्रव्य दूषित सौन्दर्य प्रसाधनों के प्रयोग से व प्रचलित मिथ्या आहार-विहार से अपने मुखमण्डल की त्वचा विकृत करके अनेक सौन्दर्य नाशक मुख मण्डलीय व्यंग, युवान पिडिकादि क्षुद्र रोगों से आक्रान्त हो रही है । युवावस्था में होने वाली युवान पिडिका से मुख का सौन्दर्य नष्ट होता है, शारीरिक वेदना के साथ-साथ मानसिक कष्ट भी बना रहता है, अतः इस व्याधि का शोध हेतु चयन किया गया ।

शोध कार्य के अन्तर्गत वर्ण्य महाकषाय घनवटी कल्पित (घटक द्रव्य – चन्दन, नागकेशर, पद्मकाष्ठ, खस, मुलेठी, मंजीठ, सारिवा, क्षीर विदारी, श्वेतदूर्वा, श्यामदूर्वा एवं चिरायता) व चन्द्रप्रभा लेप कल्पित (घटक द्रव्य – पीली सरसों, वच, लोध्र, सेंधा नमक, चिरोंजी एवं मसूर दाल) का अध्येता ने युवान पिडिका के लक्षणों के आधार पर कुल 30 रोगियों पर प्रयोग किया । वर्ण्य महाकषाय घन वटी का 800 मि.ग्रा. मात्रा में प्रातः सायं जल से 60 दिन तक आभ्यंतर प्रयोग कराया गया तथा चन्द्रप्रभा लेप का 5 ग्राम प्रातः सायं गुलाब जल में मिलाकर प्रयोग कराया गया ।

पिडिका संख्या में लाभांश 72.60% तथा पिडिका घनता में लाभांश 60.42% रहा । वात दोषप्रधान पिडिका (कृष्णवर्णयुक्त) व कफ दोष प्रधान पिडिका (श्वेतवर्णयुक्त) पर वर्ण्य महाकषाय घन वटी व चन्द्रप्रभा लेप का विशिष्ट प्रभाव रहा है । रक्त वर्ण युक्त पीडिका में इस औषध का प्रभाव सामान्य रहा है ।

शरीर क्रिया – 41

मन का वैज्ञानिक विवेचन एवं मनोऽवसाद पर गुडूच्यादि योग (कल्पित) का प्रभावात्मक
अध्ययन

अध्येता : डा. प्रमोद कुमार मिश्र

निर्देशक : प्रो. महेन्द्र सिंह मीना

वर्ष : 2004

वर्तमान में व्यस्त जीवन के कारण व सामाजिक एवं पारिवारिक कारणों से जहाँ व्यक्ति मानसिक तनाव से ग्रसित रहता है वहीं शिक्षा, व्यवसाय, विवाह, रोजगार या अन्य कहीं भी यत् किंचित् असफलता हीन सत्व के व्यक्ति को प्रभावित कर मनोऽवसाद का रोगी बना देती है । मन का आयुर्वेदीय ग्रन्थों के आधार पर सैद्धान्तिक विवेचन करना व मनोऽवसाद पर गुडूच्यादि योग का प्रभावात्मक अध्ययन करना अध्येता का उद्देश्य है ।

अध्येता ने 30 रोगियों पर गुडूच्यादि योग, कल्पित (घटक द्रव्य – गुडूची, अपामार्ग, विडंग, शंखपुष्पी, बला, अभया, कूठ, शतावरी, असगंध, सर्पगन्धा, जटामांसी, ब्राह्मी, वचा, उस्तुखूदूस) के 2-2 कैप्सूल (400 मि.ग्रा. प्रति कैप्सूल) का प्रयोग प्रातः सायं दुग्ध के साथ 60 दिन तक कराया ।

मनोऽवसाद रोग पर गुडूच्यादि योग, कल्पित का प्रभाव उत्सावर्धक रहा । बैक डिप्रेशन इन्वेन्टरी स्केल के लक्षणों पर 52.66% परिणाम रहा । मनोऽवसाद के रोगियों में 43.33% को उत्तम लाभ, 40% को मध्यम लाभ तथा 13.33 % रोगियों को अल्प लाभ तथा 3.33 प्रतिशत में अलाभ की स्थिति रही । मनोऽवसाद व एन्जाइटी के मिश्रित लक्षणों में लाभ 48.46 प्रतिशत रहा ।

शरीर क्रिया – 42

वृहत्त्रयी में शरीर क्रियात्मक विषयों का अध्ययन

अध्येता	: डा. मुनेश कुमार शर्मा
निर्देशक	: प्रो. महेन्द्र सिंह मीना
वर्ष	: 2004

वृहत्त्रयी में तीन ग्रन्थों – चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता व अष्टांगसंग्रह का समावेश किया गया है । शरीर क्रिया विज्ञान सम्बन्धित ज्ञान आयुर्वेद के विभिन्न ग्रन्थों में यत्र-तत्र बिखरा हुआ पाया जाता है । शरीर क्रिया विशेष रूप से काय चिकित्सा का आधारभूत विषय है । शरीर क्रिया का ज्ञान होने पर ही रोगों का सम्यक् निदान व चिकित्सा सम्भव होती है । शरीर क्रिया विज्ञान में शरीर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयवों की क्रियाओं का ज्ञान किया जाता है । अतः इस विषय का महानिबन्ध हेतु चयन किया गया है ।

चिकित्सा प्रधान चरकसंहिता, शल्य प्रधान सुश्रुतसंहिता तथा अष्टांगसंग्रह में पर्याप्त रूप से दोष, धातु व मलों की क्रिया के रूप में विशद रूप से शरीर क्रिया का वर्णन मिलता है । मर्म, स्रोतस्, अस्थि, सन्धि, पेशी, कला, कोष्ठांग का वर्णन भी इन ग्रन्थों में प्राप्त होता है । इन्हीं समस्त विषयों का व्यवस्थित रूप से एकत्रीकरण का प्रयास इस शोध महानिबन्ध में किया गया है ।

प्रस्तुत महानिबन्ध में वृहत्त्रयी में प्राप्त होने वाले शरीर क्रियात्मक विषयों यथा – दोष, धातु, मल, ओज, प्रकृति, सार, इन्द्रियों आदि का विश्लेषणात्मक विवरण वर्तमान समय के अनुरूप प्रस्तुत किया गया है । इसके अतिरिक्त उपर्युक्त विषयों का आधुनिक चिकित्सा शास्त्र से भी सामंजस्य किया गया है ।

शरीर क्रिया – 43

अग्नि के प्राकृत वैकृत कर्मों का विवेचनात्मक अध्ययन

अध्येता : डा. नरेन्द्र कुमार शर्मा

निर्देशक : प्रो. महेन्द्र सिंह मीना

वर्ष : 2005

प्रत्येक रोग में अग्नि की विकृति किसी न किसी रूप में अवश्य होती है । चिकित्सा करते समय विकृत अग्नि को प्राकृतिक स्वरूप में लाना ही चिकित्सक का उद्देश्य होता है । अतः अग्नि के प्राकृत-वैकृत स्वरूप एवं कर्मों का ज्ञान होना आवश्यक है । अग्नि पर समुपलब्ध साहित्य अत्यन्त समृद्ध होते हुए भी उसके कर्मों की विवेचना एवं शरीर की रोगारोग्य अवस्था में उसके महत्व को प्रतिपादित करना अनुसंधान की दृष्टि से विचारणीय है, इसी तथ्य को विचार कर अध्येता ने इस विषय का चयन किया है ।

शोध कार्य हेतु विभिन्न संहिता ग्रन्थों, संग्रह ग्रन्थों एवं समुपलब्ध साहित्य से अग्नि से सम्बन्धित विषयों का एकत्रीकरण किया गया है । तत्पश्चात् उसके प्राकृत-वैकृत कर्मों की विवेचना करते हुए उसके रोगारोग्य अवस्था में महत्व को प्रतिपादित किया गया है । सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध में सैद्धान्तिक रूप से ही अग्नि से संबंधित उद्धरणों को विवेचित करने का प्रयास किया है, साथ ही आधुनिक साहित्य में उपलब्ध विषयों का आयुर्वेदीय अग्नि के साथ संबंध स्थापित करने का प्रयास किया गया है ।

सभी रोग मन्दाग्नि से होते हैं, व्याधियों में दोष-दूष्य सम्मूर्च्छना के अन्तर्गत प्रारम्भिक विकृति जठराग्नि में ही होती है, यह निष्कर्ष प्राप्त होता है ।

शरीर क्रिया – 44

अन्नवह स्रोतस् – एक शरीर क्रियात्मक अध्ययन

अध्येता : डा. महेश लाल पूर्विया

निर्देशक : प्रो. महेन्द्र सिंह मीना

वर्ष : 2005

आयुर्वेदीय संहिता ग्रन्थों में अन्न एवं आहार के परिपालनीय नियमों का विशद वर्णन किया गया है, परन्तु आज के भौतिक युग में जीविकोपार्जन की दौड़ में इन नियमों का पालन नहीं होता तथा व्यावहारिक भी नहीं है । अतः अन्न एवं अन्नवह स्रोतस् की प्राकृत क्रिया के सम्बन्ध में स्पष्ट ज्ञान की आवश्यकता है । इसीलिए प्राच्य प्रतीच्य मतानुसार अन्नवह स्रोतस् के विषय में स्पष्ट जानकारी करने हेतु इस विषय का चयन किया गया है ।

स्रोतस् शब्द में (विशिष्ट रूप में अन्नवह स्रोतस् विषयक) अवकाश युक्त, सूक्ष्म, वृहत् सभी बाह्याभ्यन्तर प्रणालिका रूपी रचनाओं का ग्रहण किया गया है, जिनमें प्राण, उदक, अन्न, दोष, धातु, उपधातु, मलों आदि का अभिवहन एवं स्रवण होता है, इन्हें ही आधुनिक मतानुसार कैपिलरीज, प्रणालिकाएँ, रक्तवाहिनियाँ आदि नामों से वर्णित किया गया है ।

महास्रोतस् का प्रथम भाग जिसमें मुख, अन्ननलिका, आमाशय, सम्पूर्ण क्षुद्रान्त्र तक के अवयव समाविष्ट होते हैं, उसे अन्नवह स्रोतस् माना गया है तथा आमाशय शब्द के लिए “नाभिस्तनान्तर जन्तोरामाशय” (चरक) इस आधार पर आयुर्वेद दृष्टिकोण से क्षुद्रान्त्र के अंतिम भाग तक की स्थिति स्वीकार की गई है तथा वाम पार्श्व से आधुनिक मतानुसार आमाशय ग्रहण किया गया है ।

शरीर क्रिया – 45

पाचकाग्नि विकृति जन्य आमदोष का शरीर क्रियात्मक अध्ययन

अध्येता	: डा. महेश चन्द पूर्विया
निर्देशक	: प्रो. महेन्द्र सिंह मीना
वर्ष	: 2005

आज के परिवर्तनशील भौतिकवादी युग में मानव अपनी व्यस्त दिनचर्या के कारण प्राचीन महर्षियों द्वारा उपदिष्ट स्वास्थ्यरक्षक उपायों का अवलम्बन न कर पाने के कारण नवीन व्याधियों से ग्रस्त होता जा रहा है । इसमें उसका प्रज्ञापराध ही कारण है । अपनी व्यस्त दिनचर्या के पराधीन होने के कारण शास्त्र सम्मत आहार—विहार का सेवन करने में असमर्थ होता जा रहा है। आयुर्वेदीय शास्त्रों में पाचन एवं चयापचय की क्रिया में पाचकाग्नि (पाचक पित्त) को मुख्य माना है । सभी रोगों की उत्पत्ति में अग्नि वैषम्य को मुख्य माना है । अग्नि की विषमता होने पर पाँचभौतिक आहार का पाचन सम्यक् रूप से नहीं होता है जिसके कारण आमोत्पत्ति होती है । अतः शास्त्रों में निर्दिष्ट कार्यशीलता को वर्तमान समय में सत्यापित करना तथा आयुर्वेद के शाश्वत सिद्धान्तों को युगानुरूप प्रस्तुत करना ही अध्येता का मुख्य उद्देश्य है ।

शरीर धातुओं का मूलोपादान आहार द्रव्यों से निर्मित होता है । आहार का सार भाग रस जब अग्नि की मन्दता होने पर परिपक्व नहीं होता है तो उसे आम कहा जाता है। अतः पाचकाग्नि के विश्लेषण के लिए पित्त और अग्नि, जठराग्नि और पाचक पित्त तथा आधुनिक पाचक रसों और पाचकाग्नि से सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया गया है। पाचन क्रिया में उत्पन्न होने वाले आम की विभिन्न अवस्थाओं को भी स्पष्ट किया गया है ।

विभिन्न आचार्यों द्वारा निर्धारित आम की परिभाषाओं की विश्लेषणात्मक विवेचना करने पर यह स्पष्ट होता है कि आमोत्पत्ति में अन्तराग्नि (जठराग्नि) ही विशेष रूप से उत्तरदायी है । यह आम एक पदार्थ न होकर विभिन्न पदार्थों का समूह, विभिन्न स्वरूपों एवं विभिन्न लक्षणों वाला कोई पदार्थ है जो कि अग्नि महाभूत के स्वाभाविक कर्म रूप, वर्ण, कान्ति आदि शरीर गुणों की प्राप्ति में बाधक है । अतः अग्नि की साम्यता अपेक्षित है ।

शरीर क्रिया – 46

त्वक् उपधातु का वैज्ञानिक विवेचन एवं तद्विकृतिजन्य श्वित्र के परिप्रेक्ष्य में विजयानन्द रस एवं मनःशिलादि लेप का प्रभावात्मक अध्ययन

अध्येता : डा. विष्णुप्रसाद शर्मा

निर्देशक : प्रो. महेन्द्र सिंह मीना

वर्ष : 2005

श्वित्र रोग सौन्दर्य में प्रतिकूल प्रभाव डालने के साथ-साथ मानसिक रूप से भी कष्टप्रद होता है, इसीलिए इस मानसिक व शारीरिक व्याधि का सरलतम व ठोस उपचार किया जाए, यही इस शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है ।

इस शोध के अन्तर्गत 35 रोगी लिए गए, जिन्हें तीन वर्ग अ, ब व स में बांटा गया, वर्ग अ में 1-10 वर्ष के 5 रोगी, वर्ग ब में 11-45 वर्ष के 25 रोगी व वर्ग स में 46-70 वर्ष के 5 रोगियों को लिया गया तथा विजयानन्द रस (रसेन्द्रसारसंग्रह, कुष्ठचिकित्सा/108-112) को 80 मि.ग्रा. प्रातः सायं पानी के साथ तथा मनःशिलादि लेप (योगरत्नाकर, कुष्ठचिकित्सा) बाह्य प्रयोगार्थ उपयोग में लिया गया । औषधि का 90 दिन तक प्रयोग किया गया ।

प्रस्तुत महानिबन्ध में श्वित्र रोगियों में चार सप्ताह के अन्दर वर्णोद्गम 23% रहा। 4-6 सप्ताह में 11%, 6-8 सप्ताह में 29%, 8-10 सप्ताह में 6%, 10-12 सप्ताह में 17% रहा तथा 12 सप्ताह के बाद भी 14% रोगियों में अलाभ की स्थिति रही ।

शरीर क्रिया – 47

प्रकृति अनुसार आहार एवं निद्रा का समीक्षात्मक अध्ययन

अध्येता : डा. राजेश कुमार शर्मा

निर्देशक : प्रो. महेन्द्र सिंह मीना

वर्ष : 2005

आयुर्वेद में सद्वृत्त व आहार-विहार की उचित प्रकार की व्यवस्था की गई है । यह व्यवस्था भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में प्रकृत्यनुसार होती है । इसी प्रकार निद्रा का भी स्वास्थ्य के प्रति महत्व बताया गया है । निद्रा भी सभी मनुष्यों में अलग-अलग तरीके से स्वास्थ्यप्रद एवं कष्टप्रद होती है । यह भी प्रकृति के अनुरूप है । प्रकृति के अनुरूप आहार-विहार की व्यवस्था करने पर ही चिकित्सा में सफलता मिलती है एवं व्यक्ति स्वस्थ रहता है । अतः अध्येता ने प्रकृति के अनुरूप आहार एवं निद्रा का अध्ययन करने हेतु विषय चयनित किया है ।

सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही व्यक्ति की प्रकृति का निर्माण जुड़ा होता है तथा व्यक्ति की प्रकृति शुक्रशोणित के संयोग के समय से ही बन जाती है जिसे बहुत से कारण प्रभावित कर सकते हैं, उनमें प्रमुख कारण देश, काल, माता का आहार-विहार एवं उसके मानसिक भाव, उस समय उस वातावरण में महाभूतों की विकार-प्रकृति आदि का प्रभाव प्रकृति पर पड़ता है ।

स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए आहार प्रकृत्यनुसार लेना नितान्त आवश्यक है । इसी प्रकार निद्रा भी सभी प्रकृति वालों के लिए समान रूप से नहीं हो सकती । सभी के लिए यह भिन्न-भिन्न होगी । त्रि उपस्तम्भ में भी इसका समावेश किया गया है ।